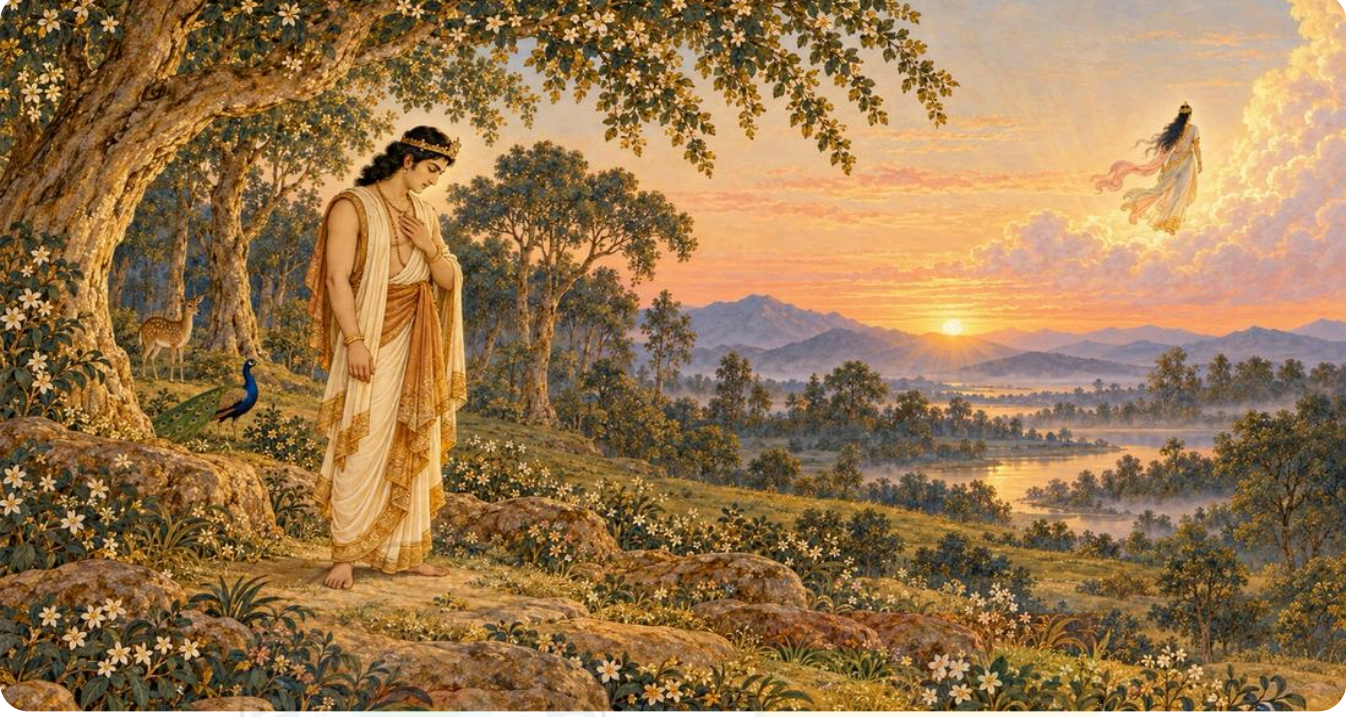


श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 11 अध्याय 26: ऐल-गीता

5 October 2026



एक महान् सम्राट् ने कभी एक दिव्य सुन्दरी के मोह में अपने जीवन के अनेक वर्ष गँवा दिए — और उसी मोह की राख में उसे परम आश्रय मिला: सन्तों का संग। भगवान् श्रीकृष्ण उद्धव को राजा पुरुरवा के विषाद तथा मुक्ति का यह गीत सुनाते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

प्रिय भक्तजनो, श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका हार्दिक स्वागत है, जो श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं के माध्यम से एक प्रेमपूर्ण यात्रा है। यहाँ भगवान्, अपने प्रिय उद्धव के सम्मुख बैठकर, एक सत्य को राजा के स्वर में गाते हैं। सम्राट् पुरुरवा ने कभी अपना हृदय अप्सरा उर्वशी को अर्पित कर दिया था, और जब वह उन्हें छोड़कर चली गई, तो वे वन में विलाप करते भटके। उसी वेदना से राजा को अपने मोह का सम्पूर्ण स्वरूप दिखाई दिया, उन्होंने उसे त्याग दिया, और गाया कि उन्हें किसने बाँधा था तथा आत्मा वास्तव में किससे मुक्त हो सकती है। भगवान् यह प्राचीन गीत उद्धव को हर जिज्ञासु हृदय के लिए एक दर्पण के रूप में सुनाते हैं — और अन्त में इसे सन्तों की स्तुति से मुकुटित करते हैं, जिनका संग ही मोह के उस घाव को भरता है।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण

- स्कन्ध: 11 (एकादश स्कन्ध)
- अध्याय: 26 (षड्विंश प्रवचन)
- अध्याय शीर्षक: ऐल-गीता
- प्रधान वक्ता: श्रीकृष्ण, उद्धव को उपदेश देते हुए; कथा के भीतर, राजा पुरुरवा (ऐल) स्वयं अपना गीत गाते हुए; समस्त सुकदेव गोस्वामी द्वारा राजा परीक्षित को कहा गया
- प्रधान श्रोता: उद्धव; कथा के भीतर, भटकते हुए अपनी वेदना पुकारते पुरुरवा स्वयं
- मुख्य स्थान: द्वारका; कथा के भीतर, वह वन जहाँ दुःखी राजा भटके थे
- केन्द्रीय विषय: काम की व्यर्थता, पुरुरवा की स्वीकारोक्ति तथा वैराग्य से दर्शाई गई, तत्पश्चात् सत्संग की महिमा पर भगवान् का उपदेश
- प्रधान श्लोक-सीमा: स्कन्ध 11, अध्याय 26, श्लोक 1-35
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

इससे पहले के अध्याय में भगवान् ने उद्धव को सिखाया था कि सत्त्व, रजस् तथा तमस् कैसे जीवात्मा की हर अवस्था को गढ़ते हैं, और भक्ति से इन गुणों पर विजय पाने वाला साधक जीवित रहते हुए भी मुक्त होकर भगवान् में विश्राम करता है। यह अध्याय उसी उपदेश को मानवीय मुख देता है — एक ऐसे राजा की कथा, जिसकी आत्मा कुछ समय रजस् से अभिभूत रही, किन्तु जो अन्ततः सत्त्व और उससे परे लौट आया।

भगवान् की कुसंग के विरुद्ध चेतावनी

भगवान् ने पुनः आरम्भ करते हुए उद्धव से कहा कि यह मनुष्य-शरीर ही वह अमूल्य साधन है जिससे उनका सच्चा स्वरूप जाना जा सकता है; जो इस शरीर में उन्हें प्रिय आचरण अपनाता है, वह अन्ततः उन्हीं को, हृदय में विराजमान परम आनन्द-स्वरूप को, प्राप्त करता है।

श्रीभगवानुवाच

मल्लक्षणमिमं कायं लब्ध्वा मद्धर्म आस्थितः ।

आनन्दं परमात्मानमात्मस्थं समुपैति माम् ॥ १ ॥

śrī-bhagavān uvāca mal-lakṣaṇam imam kāyaṁ labdhvā mad-dharma āsthitaḥ ānandaṁ paramātmānam ātma-sthaṁ samupaiti mām

अर्थ: भगवान् ने कहा: मेरे सच्चे स्वरूप को जानने का साधन, यह मनुष्य-शरीर पाकर, जो मुझे प्रिय आचरण का अवलम्बन लेता है, वह अन्ततः मुझ परम आनन्द-स्वरूप को प्राप्त करता है, जो उसके अपने ही हृदय में निवास करता हूँ। (स्कन्ध 11, अध्याय 26, श्लोक 1)

ऐसी आत्मा, दृढ़ भक्ति से पूर्णतः मुक्त होकर, विषयों के बीच रहते हुए भी उनमें आसक्त नहीं होती, क्योंकि वह जानती है कि ये भगवान् की माया से बुनी हुई मिथ्या प्रतीतियाँ मात्र हैं। इसी से भगवान् एक गम्भीर चेतावनी देते हैं: जो मनुष्य केवल इन्द्रिय-तृप्ति तथा पेट भरने में लीन रहते हैं, उनसे कभी मित्रता न रखें — ऐसे संग का परिणाम भयावह अन्धकार में डूबना है।

सङ्गं न कुर्यादसतां शिश्रोदरतृपां क्वचित् ।
तस्यानुगस्तमस्यन्धे पतत्यन्धानुगान्धवत् ॥ ३ ॥

saṅgaṁ na kuryād asatāṁ śiśnodara-tṛpāṁ kvacit tasyānugas tamasy andhe pataty andhānugāndha-vat

अर्थ: जो केवल शरीर की तृप्ति के लिए जीते हैं, ऐसे अधम पुरुषों का संग कभी न करे; क्योंकि जो ऐसे एक का अनुसरण करता है, वह उस अन्धे के समान अन्धकार में गिर जाता है जो दूसरे अन्धे के पीछे चलकर गड्ढे में गिरता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 26, श्लोक 3)

गीत के पीछे की कथा

इस चेतावनी की सत्यता दिखाने के लिए भगवान् ने प्राचीन इतिहास की एक कथा स्मरण की — देवताओं तथा राजाओं में समान रूप से विख्यात, महान् सम्राट् पुरुरवा की। कुछ काल वे अप्सरा उर्वशी के मोह में लीन रहे; वियोग ने उन्हें विह्वल कर दिया था, और कुरुक्षेत्र में पुनर्मिलन भी उनके हृदय को मुक्त न कर सका। उनका मोह इतना सघन था कि एक रात जब उर्वशी उठ चलीं, तो राजा विक्षिप्त होकर पुकारते हुए उनके पीछे दौड़े, “ठहरो, हे निष्ठुर प्रिये!” वर्षों तक उन्हें सूर्योदय-सूर्यास्त का भी भान न रहा। इसी मोह के अन्तिम छोर पर खड़े होकर पुरुरवा वह गीत गाते हैं जो भगवान् अब उद्धव को सुना रहे हैं।

पुरुरवा का विलाप

गहन आत्म-निरीक्षण में, पतित राजा लगभग अविश्वास के साथ आश्चर्य करते हैं कि उन्हें ग्रसने वाला मोह कितना विशाल था — कैसे उनके अनमोल जीवन के इतने वर्ष, उनका मन पूर्णतः किसी और के अधीन रहते हुए, बिना जाने निकल गए।

अहो मे आत्मसम्मोहो येनात्मा योषितां कृतः ।
क्रीडामृगश्चक्रवर्ती नरदेवशिखामणिः ॥ ९ ॥

aho me ātma-sammoho yenātmā yoṣitāṁ kṛtaḥ krīḍā-mṛgaś cakravartī naradeva-śikhāmaṇiḥ

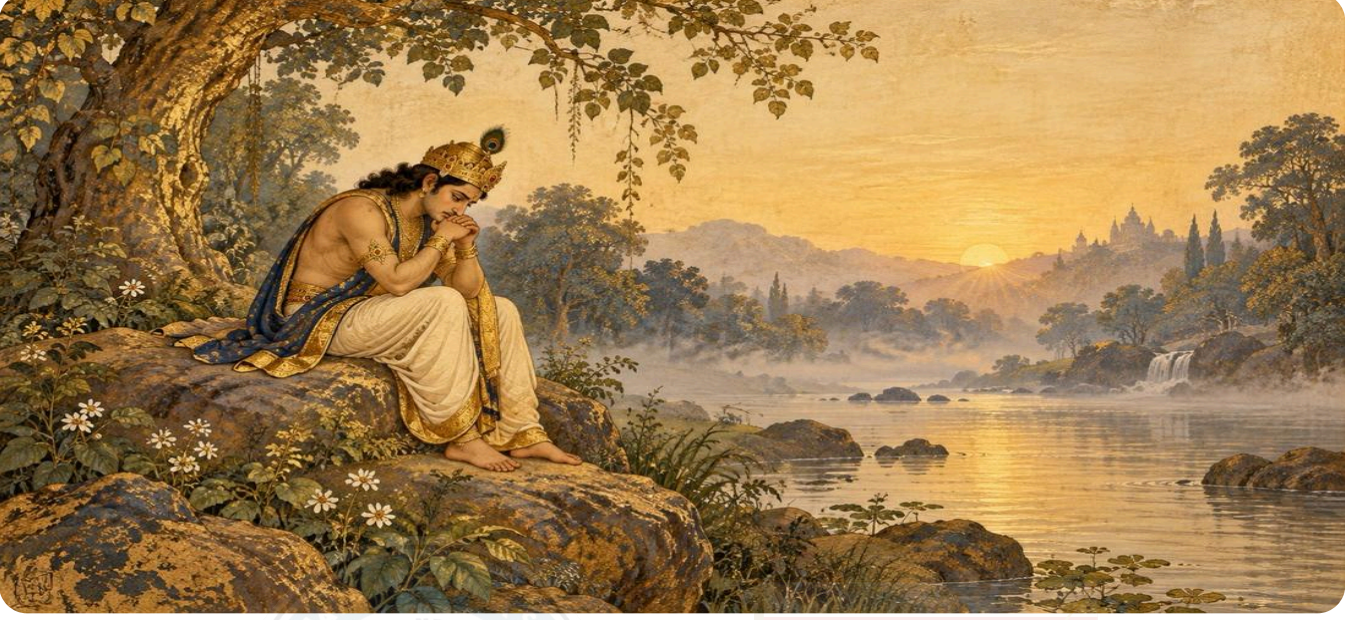
अर्थ: हाय, मेरा आत्म-मोह कितना विशाल था — जिसके कारण मैं, एक चक्रवर्ती सम्राट्, राजाओं का शिरोमणि, मोह का एक खिलौना मात्र बन गया। (स्कन्ध 11, अध्याय 26, श्लोक 9)

वे बिना बहाने के स्वीकार करते हैं कि वे सुध-बुध खोकर उनके पीछे दौड़े, अपने सिंहासन तथा गौरव को तिनके के समान त्यागकर। यद्यपि उर्वशी ने उन्हें स्पष्ट तथा बुद्धिमत्तापूर्ण वचनों से समझाया था, फिर भी उनके भीतर बसा मोह अपनी पकड़ न छोड़ सका।

बोधितस्यापि देव्या मे सूक्तवाक्येन दुर्मतेः ।
मनोगतो महामोहो नापयात्यजितात्मनः ॥ १६ ॥

bodhitasyāpi devyā me sūkta-vākyena durmateḥ mano-gato mahā-moho nāpayāty ajitātmanaḥ

अर्थ: यद्यपि उस कृपामयी ने मुझे स्पष्ट तथा उत्तम वचनों से समझाया, तथापि मेरे अस्थिर मन में बसा वह गहन मोह दूर न हुआ — इतना अनियन्त्रित हो गया था मेरा हृदय। (स्कन्ध 11, अध्याय 26, श्लोक 16)



गहन आत्म-निरीक्षण में पुरुरवा उस मोह की विशालता पर आश्चर्य करते हैं जिसने उन्हें ग्रसा था, स्वीकार करते हुए कि वे अपने ही मोह के खिलौने बन गए (श्लोक 9)।

वे और आगे बढ़कर, सच्ची विनम्रता के साथ, दोष कहीं और नहीं अपितु स्वयं पर रखते हैं: उर्वशी ने उन्हें कोई वास्तविक हानि नहीं पहुँचाई, वे कहते हैं, उतनी ही जितनी अन्धकार में रस्सी को सर्प समझने वाले भयभीत पुरुष को रस्सी पहुँचाती है — भूल तथा उससे उत्पन्न पीड़ा, दोनों का कारण उनकी अपनी असंयमित इन्द्रियाँ ही थीं।

राजा की दृष्टि निर्मल होती है

इस निष्कपट वेदना से पुरुरवा को वह स्पष्टता मिलती है जो उन्हें पहले कभी न मिली थी। वे विचार करते हैं कि जिस शरीर की हम इतनी प्रशंसा तथा आसक्ति रखते हैं, वह वास्तव में अनित्य तथा निम्न अन्त वाला है, राख या धूल में परिणत होने वाला; और वे आश्चर्य करते हैं कि हृदय कितनी सहजता से इस सत्य को भूलकर उसी पर अपनी भक्ति उड़ेल देता है जो टिक नहीं सकता। इससे उनका दृढ़ निश्चय उत्पन्न होता है: जो अपने वास्तविक हित की चिन्ता करता है, उसे यह ध्यान रखना चाहिए कि उसकी दृष्टि तथा संग कहाँ ठहरते हैं, क्योंकि वास्तव में न तो व्यक्ति दोषी है न वस्तु, अपितु असंयमित इन्द्रिय का अपने विषय से मिलन ही है जो मन को क्षुब्ध करता है।

अथापि नोपसज्जेत स्त्रीषु स्त्रैणेषु चार्थवित् ।

विषयेन्द्रियसंयोगान्मनः क्षुभ्यति नान्यथा ॥ २२ ॥

athāpi nopasajjeta strīṣu straiṇeṣu cārtha-vit viṣayendriya-saṁyogān manaḥ kṣubhyati nānyathā

अर्थ: अतः जो अपना सच्चा हित जानता है, वह सतर्क रहे कि उसकी दृष्टि या संग उस पर न ठहरे जो ऐसी लालसा जगाए, न ही उसके प्रति आसक्त लोगों पर; क्योंकि इन्द्रियों का अपने विषयों से मिलन ही, अन्य कुछ नहीं, मन को क्षुब्ध करता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 26, श्लोक 22)

जिसे कभी देखा या सुना ही न गया हो, वह कोई हलचल नहीं मचा सकता — इस प्रकार तर्क करते हुए, विवेकी आत्मा, इन्द्रियों को उन्हें विचलित करने वाली वस्तुओं से शान्तिपूर्वक हटाकर, मन को अन्ततः स्थिर तथा शान्त होने देती है।



पुरूरवा यह निश्चय करते हैं कि उनकी दृष्टि तथा संग कहाँ ठहरते हैं, क्योंकि इन्द्रियों का विषयों से मिलन ही, अन्य कुछ नहीं, मन को क्षुब्ध करता है (श्लोक 22)।

पुरूरवा संसार का त्याग करते हैं

इस गीत को ऊँचे स्वर में गाते हुए, पुरूरवा — जो कभी देवों तथा मनुष्यों दोनों के गौरव थे — उर्वशी के मोहक लोक से सदा के लिए विमुख हो गए। उसी क्षण उन्हें भगवान् का अपने ही अन्तरतम आत्मा के रूप में बोध हुआ, और उनका दीर्घकालीन मोह किसी पुराने वस्त्र के समान उतर गया। इसके पश्चात् वे सांसारिक जीवन से पूर्णतः निवृत्त हो गए, अन्ततः एक मुक्त पुरुष बनकर।

सत्संग की महिमा

यहीं, पुरूरवा की अपनी वेदना को प्रमाण बनाकर, भगवान् इस उपदेश को उसके वास्तविक लक्ष्य की ओर मोड़ते हैं — केवल कुसंग से सावधान करने के लिए नहीं, अपितु उसके परे स्थित कहीं अधिक महान् कल्याण दिखाने के लिए। अधम संग त्यागकर, बुद्धिमान पुरुष को सन्तों का संग करना चाहिए, क्योंकि उन्हीं के वचन मन की गहन उलझन को काट सकते हैं।

ऐसे सन्त किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं रखते; उनका हृदय पूर्णतः भगवान् में ही स्थित रहता है, वे परम शान्त होकर समस्त प्राणियों को समान दृष्टि से देखते हैं। वे किसी वस्तु को “मेरी” नहीं मानते, किसी अहंकार को नहीं पालते, और सुख-दुःख दोनों में अविचलित रहते हैं।

सन्तोऽनपेक्षा मच्चित्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः ।

निर्ममा निरहङ्कारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ॥ २७ ॥

santo 'napekṣā mac-cittāḥ praśāntāḥ sama-darśinaḥ nirmamā nirahaṅkāṛā nirdvandvā niṣparigrahāḥ

अर्थ: सन्त किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं रखते, उनका हृदय मुझमें ही स्थित रहता है; परम शान्त होकर वे समस्त प्राणियों को समान दृष्टि से देखते हैं। वे किसी को “मेरा” नहीं मानते, अहंकार नहीं पालते, द्वन्द्वों से अविचलित रहते हैं, और किसी वस्तु के स्वामी नहीं बनते। (स्कन्ध 11, अध्याय 26, श्लोक 27)



भगवान् सन्तों का वर्णन करते हैं जो किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं रखते, जिनका हृदय भगवान् में ही स्थित है, और जो समस्त प्राणियों को समान दृष्टि से देखते हैं (श्लोक 27)।

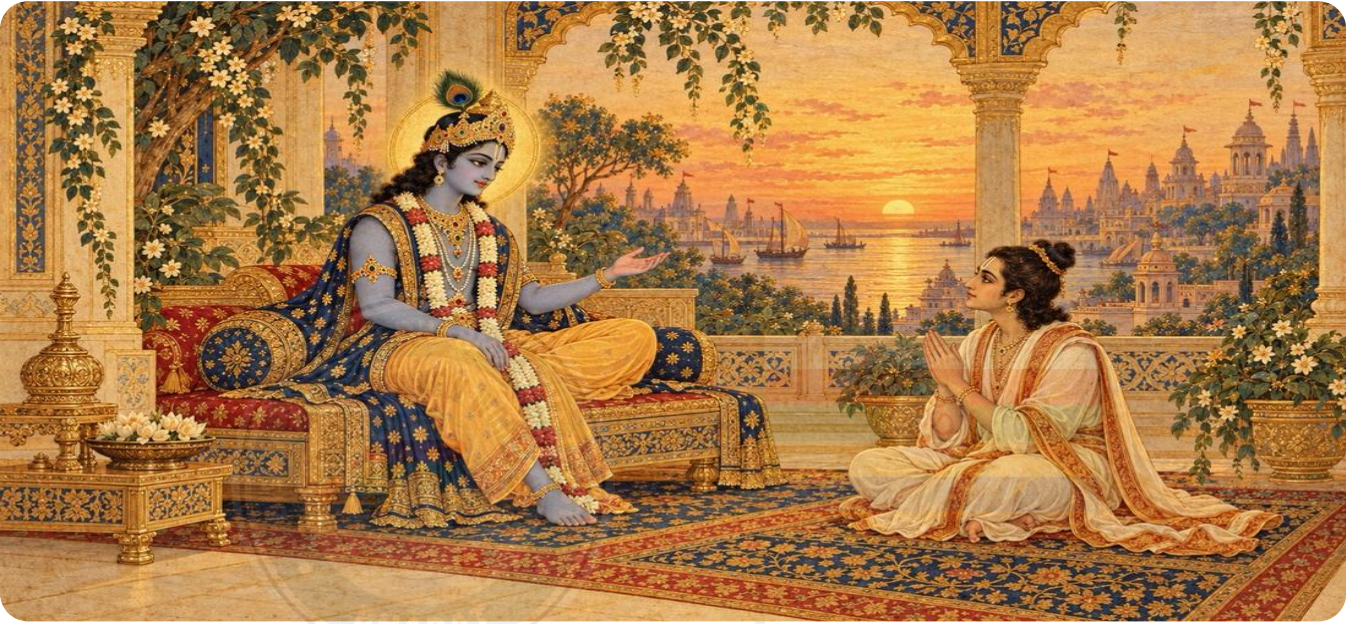
यही वह सार है जो भगवान् उद्धव को — तथा हम सभी को — पुरुरवा की वेदना से ग्रहण करवाना चाहते हैं। जिस राजा ने पृथ्वी को जीता था, वह अकेले अपने मन को न जीत सका; जो संकल्पशक्ति से सम्भव न हुआ, वह सन्तों के संग से सहज ही सिद्ध हो जाता है, क्योंकि उनकी उपस्थिति भीतर से बाँधने वाली आसक्तियों को गला देती है। ऐसे ही भाग्यशाली जनों की सभाओं में भगवान् की पावन कथाएँ सुनाई जाती हैं, जो उन्हें सुनने वालों को शुद्ध करती हैं — और जो उन्हें श्रद्धापूर्वक सुनते, गाते तथा सम्मान देते हैं, वे सच्ची भक्ति को प्राप्त होते हैं। ऐसी आत्मा को और क्या चाहिए, जिसे सब कारणों के परम कारण, सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप भगवान् ही प्राप्त हो गए हों? जैसे प्रचण्ड अग्नि के समक्ष शीत तथा अन्धकार विलीन हो जाते हैं, वैसे ही हृदय की कठोरता तथा पुनर्जन्म का भय, पुण्यात्माओं की सेवा करने वाले के समक्ष गल जाते हैं। जैसे डूबते हुए के लिए दृढ़ नौका ही आश्रय है, वैसे ही शान्ति को प्राप्त सन्त ही संसार-सागर में डूबती आत्माओं के लिए सर्वोच्च आश्रय हैं — क्योंकि जैसे प्राण जीवन है, तथा पुण्य ही मृत्यु के पार साथ जाने वाला धन है, वैसे ही सन्त ही उसका आश्रय हैं जो पुनः जन्म लेने से भयभीत है।

सन्तो दिशन्ति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः ।

देवता बान्धवाः सन्तः सन्त आत्माहमेव च ॥ ३४ ॥

santo diśanti cakṣūṁṣi bahir arkaḥ samutthitaḥ devatā bāndhavāḥ santaḥ santa ātmāham eva ca

अर्थ: सूर्य, चाहे कितना भी तेजस्वी होकर उदय हो, केवल बाह्य नेत्र ही देता है; सन्त ही सच्चे ज्ञान का अन्तर्नेत्र प्रदान करते हैं। अतः सन्त ही हमारे सच्चे देवता हैं, हमारे सच्चे बन्धु हैं, हमारी अपनी आत्मा हैं — और वास्तव में, वे मुझसे भिन्न कुछ नहीं हैं। (स्कन्ध 11, अध्याय 26, श्लोक 34)



भगवान् कहते हैं कि सन्त वह अन्तर्नेत्र प्रदान करते हैं जो उगता सूर्य भी नहीं दे सकता, क्योंकि सन्त स्वयं उनसे भिन्न कुछ नहीं (श्लोक 34)।

आत्मा में मुक्त

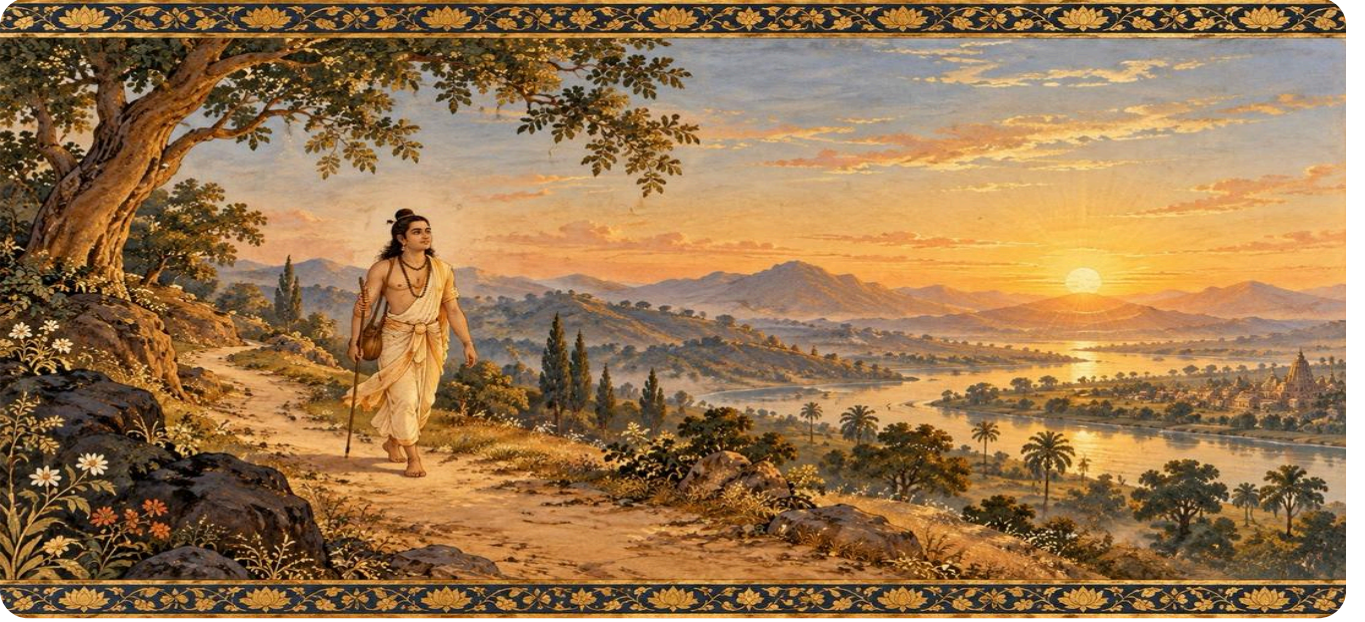
उर्वशी के संग या उनके दिव्य लोक की समस्त लालसा से सर्वथा मुक्त होकर, राजा पुरुरवा — अपने पैतृक नाम ऐल के नाम से भी स्मरणीय — इस पृथ्वी पर पूर्णतः सन्तुष्ट हृदय से विचरण करने लगे, किसी बन्धन से रहित, केवल अपनी ही आत्मा में आनन्दित।

वैतसेनस्ततोऽप्येवमुर्वश्या लोकनिष्प्रहः ।

मुक्तसङ्गो महीमेतामात्मारामश्चचार ह ॥ ३५ ॥

vaitasenas tato 'py evam urvaśyā loka-niṣprahaḥ mukta-saṅgo mahīm etām ātmārāmaś cacāra ha

अर्थ: इस प्रकार पुरुरवा, उर्वशी के लोक की समस्त लालसा से मुक्त, सब आसक्तियों से छूटकर, केवल आत्मा में आनन्दित होते हुए इस पृथ्वी पर विचरण करने लगे। (स्कन्ध 11, अध्याय 26, श्लोक 35)



उर्वशी के लोक की समस्त लालसा से मुक्त होकर पुरुरवा केवल आत्मा में आनन्दित, इस पृथ्वी पर विचरण करते हैं (श्लोक 35)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. यह शरीर भगवान् को जानने का अमूल्य अवसर है। जो आत्मा भगवान् को प्रिय आचरण में जीती है, वह अन्ततः उन्हीं को, अपने ही हृदय में विराजमान, प्राप्त करती है (श्लोक 1)।
2. अपने संग के प्रति सावधान रहें। केवल शरीर की तृप्ति से शासित जनों का संग मन को अन्धकार में घसीट ले जाता है, जैसे एक अन्धा दूसरे अन्धे के पीछे चलकर गड्ढे में गिर जाता है (श्लोक 3)।
3. दोष असंयमित आत्मा में है, संसार में नहीं। पुरुरवा की स्वीकारोक्ति सिखाती है कि हमें वास्तव में कोई बाह्य व्यक्ति या वस्तु नहीं बाँधती, अपितु हमारी अपनी असंयमित इन्द्रियाँ अपने विषयों से बार-बार मिलकर बाँधती हैं (श्लोक 9-22)।
4. भगवान् हमारे पतन को भी शिक्षा बना देते हैं। कृष्ण एक राजा के गहनतम पतन का वर्णन उसे लज्जित करने के लिए नहीं, अपितु एक आत्मा की निष्कपट वेदना से यह दिखाने के लिए करते हैं कि मोह कैसे उत्पन्न होता है तथा कैसे दूर होता है — यही इस अध्याय का धर्मशास्त्रीय हृदय है: भगवान्-चरणों में समर्पित होने पर कोई भी वेदना व्यर्थ नहीं जाती (श्लोक 7-25)।
5. जहाँ संकल्पशक्ति विफल होती है, वहाँ सत्संग सफल होता है। एक शक्तिशाली सम्राट् भी स्वयं संकल्प से अपना मन मुक्त न कर सका; केवल सन्तों का संग, जिनके वचन गहरी आसक्ति को काट देते हैं, वह कर दिखाता है जो अन्य कुछ नहीं कर सकता (श्लोक 26-27)।
6. सन्त ही हमारा सच्चा आश्रय हैं। जैसे अग्नि शीत तथा अन्धकार को दूर करती है, और नौका डूबते हुए को बचाती है, वैसे ही सत्संग अज्ञान को गला देता है तथा आत्मा को जन्म-मृत्यु के सागर से पार कराता है — क्योंकि सन्त, भगवान् कहते हैं, स्वयं उनसे भिन्न कुछ नहीं (श्लोक 31-34)।

एक भाक्तेपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय की शिक्षा देने के ढंग में भगवान् की गहन करुणा झलकती है। वे उद्धव को केवल यह आज्ञा नहीं देते, “कुसंग त्यागो, सत्संग करो।” वे एक कथा सुनाते हैं — किसी दूरस्थ दुष्ट की नहीं, अपितु एक महान् राजा की, जो उसी काम-वासना से गिरे जो चुपचाप हर मानव-हृदय को ललचाती है। पुरुरवा के अपने स्वर से यह उपदेश कहलवाकर, भगवान् पतन में भी गरिमा का सम्मान रखते हैं; यह गीत राजा को अपमानित नहीं करता, वरन् हमें यह देखने देता है कि वेदना धीरे-धीरे ज्ञान में कैसे परिणत होती है। और सबसे हृदयस्पर्शी यह है कि यह गीत अन्ततः सन्तों में पहुँचता है — उस सहज उपाय में जो सदा निकट ही था। यदि पृथ्वी के स्वामी राजा भी इच्छाशक्ति से मन को वश में न कर सके, तो हम में से कौन कर सकेगा — और कितनी बड़ी राहत है यह जानना कि हमें अकेले प्रयत्न करने को नहीं कहा गया।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, भगवान् की ओर हृदय मोड़ने वाले जनों का संग — चाहे अल्प समय के लिए ही — प्राप्त कीजिए: भगवान् की कथाओं के साथ कुछ शान्त क्षण, किसी भक्त से दो मधुर शब्द, या भगवान् के चित्र के समक्ष प्रार्थनापूर्ण हृदय से बैठना। ऐसा करते हुए पुरुरवा की स्वीकारोक्ति स्मरण कीजिए, मन में शेष अहंकार को कोमल होने दीजिए, और उसी मन को भगवान् की ओर प्रेमपूर्वक मोड़कर जपिए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” सत्संग की इस छोटी खोज में आप उसी मार्ग पर चलते हैं जिसने एक व्यथित सम्राट् को मुक्त किया।

उपसंहार

ऐल-गीता में भगवान् उद्धव को एक स्वीकारोक्ति के भीतर लिपटी शिक्षा देते हैं। राजा पुरुरवा, वर्षों उर्वशी के मोह में डूबे रहने के पश्चात्, अन्ततः पीड़ादायक स्पष्टता से देखते हैं कि उन्हें किसी अन्य ने नहीं, अपितु उनकी अपनी असंयमित इन्द्रियों ने बाँधा था — और यह बोध होते ही उनका मोह टूट जाता है, और वे आत्मा में आनन्दित, एक मुक्त पुरुष बनकर चल पड़ते हैं। किन्तु भगवान् अध्याय को वेदना में समाप्त नहीं होने देते; वे इसे सन्तों की स्तुति तक उठा ले जाते हैं, जिनका संग वहाँ सफल होता है जहाँ संकल्पशक्ति विफल होती है, और जो वह अन्तर्नेत्र देता है जो उगता सूर्य भी नहीं दे सकता। जिस राजा ने पृथ्वी पर शासन किया, वह अपने मन पर शासन न कर सका — किन्तु सत्संग की कृपा से उसे वह आश्रय मिल गया जो कभी विफल नहीं होता। हम भी ऐसे संग को समस्त सम्पदाओं से बढ़कर संजोएँ।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य वाणी हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), एकादश स्कन्ध, षड्विंश प्रवचन, पृष्ठ 638–643।
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक से किसी सम्बन्ध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-11-adhyay-26-aila-gita-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

